पाश्चात्य दर्शन की भूमिका

अपने दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करने के लिए अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का सम्यक् बोध भी आवश्यक होता है। जो विचारक अन्य संस्कृतियों और जीवन–मूल्यों की उपेक्षा करते हैं, उनका अपना सांस्कृतिक मूल्य–बोध एकांगी तथा संकीर्ण हो जाता है। पाश्चात्य दर्शन के मूल तत्त्वों को बिना समझे हुए हमारी भारतीयता की पहचान भी अपूर्ण होगी। इसलिए विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धांतों का विवेचन करते समय उनकी संक्षिप्त तुलना प्रासंगिक भारतीय दार्शनिकों के मतों से की गयी है। दार्शनिक अनुशीलन के प्रारम्भ से लेकर अर्वाचीन दर्शन तक ज्ञान, सत् और मूल्य अथवा सत्यं–शिवं–सुन्दरं का विवेचन और मूल्यांकन ही दार्शनिक चिन्तन का केन्द्र रहा है। केवल बीसवीं शताब्दी का विश्लेषी दर्शन इसका अपवाद है क्योंकि विश्लेषी दार्शनिकों की अभिरूचि परम्परागत दार्शनिक समस्याओं के निरूपण में नहीं थी।

दर्शनशास्त्र की सामाजिक प्रासंगिकता

मनुष्य का जीवन और चिन्तन दोनों साथ–साथ प्रारम्भ होता है। जब तक मनुष्य में चिंतन का विकास प्रारम्भ नहीं होता है तब तक वह सही अर्थों में मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता है। मनुष्य में यह जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि जीवन का क्या लक्ष्य है? मानव–जीवन का क्या अर्थ है? मानवेतर प्राणी न तो यह जानने का प्रयास करते हैं और न यह जानने में समर्थ हैं कि जीवन का क्या लक्ष्य है अथवा जीवन का क्या अर्थ है? इस जिज्ञासा की संतुष्टि के लिए मानव अपने जीवन के लक्ष्यों एवं जीवन–मूल्यों के प्रति अपना एक दृष्टिकोण विकसित कर लेता है। जीवन के स्वरूप और लक्ष्य को समझने के लिए जगत् के स्वरूप एवं प्रयोजन को समझना भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि मनुष्य का जीवन और मूल्यों का अनुसंधान इस जगत् में ही संभव होता है। अतः यह जगत् भी स्वाभाविक रूप से मानव–चिंतन का विषय हो जाता है।

यदि जगत् के स्वरूप पर अनुशीलन किया जाय तो यह अत्यन्त विचित्र प्रतीत होता है। हम यह देखते हैं कि एक ओर बसन्त की सुषमा एवं मादकता समस्त प्राणियों को आह्लादित

करती है तो दूसरी ओर गरमी की तपन से वे व्याकुल हो जाते हैं। इसी प्रकार ऋतुओं का परिवर्तन, उपर तारों से भरा हुआ आकाश, भूकम्प, तूफान, महामारी, ज्वालामुखी–विस्फोट आदि मनुष्य के मन में कौतूहल, भय, आश्चर्य एवं जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। वैज्ञानिक इन घटनाओं के स्वरूप की व्याख्या कारण–कार्य नियम के आधार पर करते हैं। किन्तु कारण–कार्य शृंखला का ज्ञान मानव–कौतूहल को शान्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कारण–कार्य का सिद्धान्त केवल यह निर्दिष्ट करता है कि ये घटनाएँ किसी विशेष नियम के अनुसार घटित होती हैं। किन्तु विज्ञान यह नहीं स्पष्ट कर पाता है कि इस जगत् का क्या प्रयोजन है? ये घटनाएँ इस नियम के अनुसार क्यों घटित होती हैं? यही कारण है कि वैज्ञानिक ज्ञान के विकसित होने पर भी आज 21वीं शताब्दी में भी यह प्राकृतिक जगत् मनुष्य के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यह ब्रह्माण्ड सौन्दर्य से युक्त (Beautious) और उदात्त (Sublime) है। इसके समग्र स्वरूप को समझने की जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से मनुष्य को एक विशेष प्रकार के चिन्तन के लिए प्रेरित करती है। जिसके फलस्वरूप दार्शनिक अनुशीलन का विकास होता है।